बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:20-08-19

भ्रामक बयान

संपादकीय

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के निधन की पहली बरसी पर सरकार ने उनके कार्यकाल के प्रमुख सिद्धांतों में से एक पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। सन 1998 में वाजपेयी के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार ने जिस पोकरण में परमाणु परीक्षण किया था, उसकी यात्रा के बाद रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने ट्वीट किया 'पोकरण वह स्थान है जो अटल जी के भारत को परमाणु शक्ति बनाने और उसके बावजूद इन हथियारों का पहले इस्तेमाल न करने की प्रतिबद्धता जताने का साक्षी रहा है।' सिंह ने लिखा कि भारत इस सिद्धांत का दृढ़ता से पालन करता रहा है लेकिन भविष्य में क्या होगा यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यह पहला अवसर नहीं है जब किसी केंद्रीय मंत्री ने पहले इस्तेमाल न करने की प्रतिबद्धता पर सवाल उठाया है। सन 2016 में तत्कालीन रक्षा मंत्री मनोहर पर्रिकर ने भी सन 2003 से लागू इस नीति को लेकर संदेह जताया था।

यह सही है कि ऐसी किसी भी रक्षा नीति के बुनियादी तत्त्वों पर कभी भी बहस की गुंजाइश रहती है और इनका समय-समय पर आकलन किया जाना चाहिए लेकिन सवाल यह है कि इस वक्त सिंह के वक्तव्य का मूल्य क्या है और क्या इस नीति में बदलाव की आवश्यकता है और सरकार में इस बारे में पूरी चर्चा की जा चुकी है। सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों तरह के सवाल पूछे जा सकते हैं। सैद्धांतिक तौर पर यह नीति अन्य परमाणु हथियार संपन्न देशों के विरुद्ध एक विश्वसनीय प्रतिरोध है और अस्थिर माहौल में स्थिरता लाने का काम करती है। यह नीति यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती है कि इन हथियारों का सैन्य प्रयोग दूर बना रहे क्योंकि वह व्यापक आपदा का कारण बन सकता है। जंगी माहौल यह दर्शा चुके हैं कि यह शत्रु द्वारा परमाणु हथियारों की सामरिक तैनाती को रोकने में प्रभावी भूमिका निभाता है। यह सामरिक रूप से प्रभावी होता है लेकिन यह सामरिक परमाणु हथियारों के प्रलयकारी विनिमय की ओर भी ले जा सकता है, जिसे दोनों देश टालना ही बेहतर समझते होंगे।

ध्यान देने वाली बात यह है कि पहले प्रयोग न करने की नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि शीतयुद्ध के दिनों में निहित है। उस समय यूरोप के भीतर पारंपरिक सैन्य शक्ति में वारसा संधि को बड़ी बढ़त हासिल थी। उस वक्त नाटो ने सोवियत आक्रमण के दौरान पश्चिमी यूरोप को गंभीर खतरा उत्पन्न होने की स्थिति में परमाणु हथियार के पहले इस्तेमाल के विकल्प को खुला रखा था। परंतु, सोवियत सेना जिसे पारंपरिक लड़ाई में बढ़त हासिल थी, उसने सन 1983 में पहले इस्तेमाल न करने की नीति अपना ली। सोवियत संघ का विभाजन होने और रूस की पारंपरिक बढ़त समाप्त होने के बाद रूस ने इस नीति को त्याग दिया। भारत को भी पाकिस्तान पर पारंपरिक बढ़त हासिल है। ऐसे में यह नीति समझ में आती है। सवाल यह है कि क्या किसी बड़े विवाद में भी यह कारगर होगी?

ये वे सवाल हैं जिन पर सावधानीपूर्वक चर्चा होनी चाहिए और इस दौरान देश की पारंपरिक शक्ति और परमाणु जखीरे को भी ध्यान में रखना चाहिए। राजनाथ सिंह के बयान जैसी बातें केवल सामरिक भ्रम पैदा करेंगी जो देश के हित में नहीं है। यह भी ध्यान देने लायक है कि हमारी पारंपरिक बढ़त भी समाप्त हो रही है क्योंकि रक्षा पर पर्याप्त खर्च नहीं

हो रहा है। ऐसे में हमारा परमाणु प्रतिरोध भी इतना मजबूत नहीं है जिससे सैन्य नीतिकार सोचें कि पहले हमला करके हम शत्रु की संभावित क्षमता को पूरी तरह नष्ट कर देंगे। अगर रक्षा मंत्री केवल यही बताना चाहते हैं कि उनकी पार्टी के 2014 के घोषणापत्र के अनुरूप परमाणु सिद्धांत का पुनराकलन हो रहा है, तो यह बताने के अन्य तरीके भी हैं।

दैनिक भास्कर

Date:20-08-19

अब सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति शुरू करने की जरूरत

संपादकीय

बिहार के नालंदा जिले में टीबी की मरीज एक महिला अपनी दो बच्चियों को बेचने जा रही थी, ताकि वे भूख से न मरें और पैसों से महिला का इलाज हो सके। एक समाचार एजेंसी के अनुसार उसका पति उसे छोड़ कर भाग गया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और बंगाल सहित देश के तमाम भागों से अक्सर ऐसी रिपोर्टें छोटी सी खबर बनती हैं। किसी भी तथाकथित सांस्कृतिक रूप से समृद्ध देश में सत्ता व अभिजात्य वर्ग को झकझोरने के लिए ये खबरें काफी होनी चाहिए। किंतु हमारे योजनाकार अभी तक ऐसा कोई मानक नहीं तैयार कर पाए हैं, जिससे पता चले कि शराबी पति ने कब पैसे देना बंद कर दिया और कब से बेसहारा मां आधा दर्जन बच्चों के साथ दाने-दाने को तरस रही है। सरकारी आंकड़े में पति की कमाई उसे गरीबी की सीमा रेखा से ऊपर पाती है लिहाज़ा देश खुशहाल। बेची गईं बच्चियां इस हिंसक समाज द्वारा पतन के किस गर्त में डाली जाएंगी, इसे समझने के लिए आइंस्टीन का दिमाग नहीं चाहिए, लेकिन हम इस बात से खुश हो जाते हैं कि नया वेतनमान कब से लागू होगा, जीडीपी की वृद्धि दर छह प्रतिशत है या सात या आठ और कब हम पांच ट्रिलियन डॉलर की इकोनॉमी बन जाएंगे। बढ़ती जीडीपी, रोज आकार लेते मॉल, फ्लाईओवर और हवाई यात्रियों की बढ़ती संख्या ने हमें और हमारे नीतिकारों को संवेदना-शून्य बना दिया है। तभी तो इस देश में सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2016 में हर 15 मिनट पर दुष्कर्म की रिपोर्ट दर्ज हुई (ध्यान रहे कि लोकलाज से अधिकांश मामले प्रकाश में नहीं आते)। दरअसल, भारत जैसे उदार प्रजातंत्र में कोई कानून एक बाप को न तो शराबी होने से रोक सकता है, न ही बच्चे पैदा करने से और न ही उसे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी के लिए बाध्य कर सकता है। गरीबी मां के नैसर्गिक ममत्व पर भारी पड़ती है। धार्मिक गुरुओं से यह उम्मीद थी पर उन्होंने निराश किया। सांस्कृतिक संस्थाओं से यह अपेक्षा थी कि वे आगे आएं, लेकिन उनमें से सबसे बेहतरीन संगठन और सोच वाली संस्था -राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ- ने भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बात तो की लेकिन कभी भी व्यक्तिगत-पारिवारिक शुचिता और नैतिकता या समाज में कोढ़ के रूप में फैले भ्रष्टाचार पर कोई सार्थक पहल नहीं की। आज सबसे उपयुक्त अवसर है जब ऐसे संगठन सत्ता की मदद लेकर नई सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति की शुरुआत करे।

नईदुनिया

Date:20-08-19

मंदी का गहराता अंदेशा

इन दिनों ऐसी खबरे अधिक आ रही हैं जो झंगीत करती हैं। की भारतीय अर्थव्यवस्था मंदी के दौर मै प्रवेश कार रही हैं इससे आम लोगो का आशंकित होना स्वाभिक हैं।

संपादकीय

रिजर्व बैंक के गवर्नर शक्तिकांत दास का यह कथन मंदी की आहट पर मुहर लगाने वाला है कि अर्थव्यवस्था शिथिल पड़ रही है। हालांकि अर्थव्यवस्था की आंतरिक और बाहरी चुनौतियों का जिक्र करते हुए उन्होंने यह भी कहा कि लोगों को निराशा के सुर में सुर मिलाने की जगह आगे के अवसरों को देखना चाहिए, लेकिन ऐसा तो तभी होगा जब उन्हें अर्थव्यवस्था के मोर्चे पर कुछ बेहतर होते हुए दिखेगा। मुश्किल यह है कि इन दिनों ऐसी ही खबरें अधिक आ रही हैं जो यह इंगित करती हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था मंदी के दौर में प्रवेश कर रही है। आर्थिक विकास के आंकड़े, शेयर बाजार का हाल, घटता निवेश एवं औद्योगिक उत्पादन में गिरावट के साथ कारों और अन्य वाहनों की कम होती बिक्री यदि कुछ कह रही है तो यही है कि मंदी दबे पांव आगे बढ़ रही है। इससे आम लोगों का आशंकित होना स्वाभाविक है। यह सही है कि मोदी सरकार उद्योग जगत को कुछ रियायत-राहत देने पर विचार कर रही है, लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नहीं होगा। उसे यह भी देखना होगा कि औद्योगिक-व्यापारिक गतिविधियां तेजी पकड़ें। नि:संदेह ऐसा तब होगा जब विभिन्न वस्तुओं की मांग बढ़ेगी। स्पष्ट है कि सरकार को कुछ ऐसे भी उपाय करने होंगे जिससे आम आदमी को राहत मिले और वह इस मानसिकता से मुक्त हो कि आने वाले कठिन समय को देखते हुए पैसे बचाकर रखने की जरूरत है।

सरकार के नीति-नियंताओं को मंदी को गहराने से रोकने के लिए सक्रिय होने के साथ ही यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि जीडीपी में मैन्यूफैक्चरिंग की हिस्सेदारी कैसे बढ़े? मेक इन इंडिया के बावजूद यह हिस्सेदारी अभी 15 प्रतिशत के आसपास ही है। इसी तरह निर्यात के मोर्चे को भी मजबूत करने की जरूरत है। नि:संदेह इसकी भी सख्त जरूरत है कि आवास एवं सड़क निर्माण परियोजनाओं के साथ ग्रामीण ढांचे के विकास को प्राथमिकता मिले। इससे रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि होगी और अर्थव्यवस्था का पहिया गति पकड़ते हुए दिखेगा। सरकार को न केवल निवेश में कमी के कारणों की तह तक जाना होगा, बल्कि उनका निवारण भी करना होगा। निजी निवेश में कमी आते चले जाना शुभ संकेत नहीं। रिजर्व बैंक के गवर्नर ने यह सही कहा कि सकारात्मक रवैये की बड़ी भूमिका होती है। बेहतर होगा कि सरकार भी इस भूमिका का महत्व समझे। यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि आम बजट के जरिये उठाए गए कई कदमों ने निवेशकों को निराश करने का काम किया है। एक तथ्य यह भी है कि बैंक मुसीबत से बाहर निकलते उसके पहले ही आइएलएंडएफएस के संकटग्रस्त होने से हालात और प्रतिकूल हो गए।

Date:20-08-19

बढ़ती आबादी राष्ट्रीय चिंता का विषय

संसाधनों की सीमा है, किंतु जनसंख्या का विस्फोट है। सो, समेकित विकास के सभी उपाय अपेक्षित परिणाम नहीं दे रहे हैं।

हृदयनारायण दीक्षित

मनुष्य जीवन स्वतंत्र निरपेक्ष नहीं है। जीवन प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित है। संसाधन सीमित हैं। पृथ्वी सीमित है, शुद्ध जल और वायु भी सीमित हैं। मनुष्य ने सुखमय जीवन के तमाम संसाधन गढ़े हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य अपराध नियंत्रण की व्यवस्था, यात्रा, वस्त्र आदि संसाधन भी असीम नहीं हैं। संसाधनों की सीमा है, लेकिन जनसंख्या का विस्फोट है। सो भारतीय राष्ट्र में समेकित विकास के सभी उपाय अपेक्षित परिणाम नहीं दे रहे हैं। महानगरों में रोड जाम हैं, फ्लाईओवर बनते हैं। कुछ दिन बाद उन पर भी भारी भीड़। अस्पतालों की संख्या बढ़ती है, लेकिन जनसंख्या बढ़त की भीड़ भारी है। सड़क या आकाश मार्ग भीड़ से सटे हैं। शिक्षा केंद्रों में बढ़ती जनसंख्या के कारण लाखों छात्र दाखिला नहीं पाते। बढ़ती आबादी के कारण महानगर दैत्याकार फैल रहे हैं। नागरिक सुविधाएं व संसाधन अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। गांव भी फैल रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या की रफ्तार तेज है। बढ़ते संसाधन भी अपर्याप्त हैं। कृषि क्षेत्र भी घटा है। जनसंख्या वृद्धि भारत की मुख्य चुनौती है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने जनसंख्या नियंत्रण की मार्मिक अपील की है। उन्होंने जनसंख्या नियंत्रण को उचित ही देशभक्ति की संज्ञा दी है। देशभक्ति कोई साधारण कर्मकांड नहीं। राष्ट्र के प्रति जरूरी उत्तरदायित्वों का निर्वहन देशभक्ति है। जनसंख्या वृद्धि देश की चुनौती है। इसका नियंत्रण प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है, किंतु कतिपय टिप्पणीकारों ने इस अपील को भी राजनीतिक संदेश बताया, जो गलत है। सभी अभिभावक अपनी संतति का जीवन सुखमय चाहते हैं। प्रधानमंत्री ने अभिभावकों की इसी स्वाभाविक वृत्ति का उल्लेख किया है। अभिभावक सामान्यत: शिशु जन्म के बाद उसके भविष्य की चिंता आरंभ करते हैं। मोदी ने बच्चे के जन्म के पहले ही चिंता करने की बात कही है। जनसंख्या और उपलब्ध संसाधनों के अंतर्संबंधों का अध्ययन दुनिया के अनेक विचारकों का विषय रहा है। ब्रिटिश अर्थशास्त्री माल्थस ने 'प्रिंसपल ऑफ पॉपुलेशन में जनसंख्या वृद्धि और इसके प्रभावों की व्याख्या की थी। माल्थस के अनुसार 'जनसंख्या दूनी रफ्तार 1, 2, 4, 8, 16, 32 से बढ़ती है, लेकिन जीवन के संसाधन सामान्य गणित 1, 2, 3, 4, 5 की रफ्तार से बढ़ते हैं। प्रत्येक 25 वर्ष बाद जनसंख्या दोगुनी हो जाती है। ऐसे में भुखमरी और कुपोषण होंगे ही।

माल्थस की गणितीय बात पूरी तरह सही नहीं, लेकिन मूलभूत चिंता सही है। जनसंख्या और संसाधनों के समन्वय पर थॉमस सैडलर, हरबर्ट स्पेंसर, भूमिकर सिद्धांत के जन्मदाता डेविड रिकार्डो आदि ने भी गंभीर विचार किया था। भारी

जनसंख्या और कम संसाधनों का प्रभाव मनुष्य जीवन की गुणवत्ता पर भी पड़ता है। बहुधा भारी भीड़ के बीच रहने का प्रभाव मस्तिष्क पर भी पड़ता है। अपर्याप्त भूमि में भारी जनसंख्या का निवास सभ्यता और संस्कृति को भी प्रभावित करता है। प्राचीनकाल में भारत में कम जनसंख्या के लिए अधिक भूमि थी। उस समय की दार्शनिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियां बड़ी हैं। इतिहास के मध्यकाल से लेकर अंग्रेजी राज के आने तक जनसंख्या की समस्या नहीं थी। भारत में समुन्नत कृषि, उद्योग और स्वस्थ मानव संसाधन की स्थिति संतोषजनक थी। फिर जनसंख्या बढ़ी, जनसंख्या का दबाव भी बढ़ा। स्वतंत्र भारत ने ही दुनिया में सबसे पहले 1951 में जनसंख्या नियंत्रण का राजकीय अभियान चलाया था।

भारतीय परंपरा में संतानोत्पत्ति की 'मूल कामना की चर्चा भी संकोच का विषय रही है। बावजूद इसके 1975 तक जनसंख्या नियंत्रण पर खासा विमर्श चला, लेकिन आपातकाल के दौरान इंदिरा सरकार ने इस राष्ट्रीय अभियान को पलीता लगा दिया। तब जबरन नसबंदी का कार्यक्रम चला। अविवाहित नवयुवकों की भी नसबंदी हुई। इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई। सत्तारूढ़ कांग्रेस का सफाया हुआ। फिर दलतंत्र जनसंख्या नियंत्रण के नाम से ही डर गया। अब मोदी ने सार्थक पहल की है। इस पर जन-जागरूकता जरूरी है। शिक्षित और जागरूक परिवार जनसंख्या नियंत्रण के पक्ष में हैं। समृद्ध परिवारों की प्रजनन दर गरीब परिवारों की प्रजनन दर से कम है। जनसामान्य में जागरूकता पैदा करना श्रमसाध्य है। चीन बेशक इसमें सफल हुआ है, पर चीन और भारत की जनभावना में आधारभूत अंतर है। चीन की आम जनता शासन प्रायोजित कार्यक्रमों को सहज रूप में स्वीकार करती है, लेकिन भारत की जनता पहले ऐसे कार्यक्रमों का विवेचन करती है। यहां जनहितकारी कार्यक्रमों की भी आलोचना होती है। प्रधानमंत्री ने सरल ढंग से इस विषय का महत्व रखा है। यहां कोई बाध्यकारी निर्देश नहीं हैं, लेकिन ओवैसी जैसे लोग जंग के मैदान में हैं।

भारत की जनसंख्या 1951 में 361088400 थी जो 1961 में 439235720 हो गई। यानी 10 साल के भीतर ही सात करोड़ की वृद्धि हुई। 1951 से 2011 के बीच 60 वर्ष का अंतर है। 1951 की जनसंख्या 36 करोड़ 10 लाख थी, लेकिन 2011 में 1 अरब 21 करोड़ 1 लाख 93 हजार 422 हो गई। अर्थात 60 वर्ष के भीतर लगभग 85 करोड़ की वृद्धि हुई। 2019 तक के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। अनुमान है कि 2021 तक यह लगभग 1 अरब 30 करोड़ होगी। जनसंख्या वृद्धि के ये आंकड़े खतरनाक हैं। सबको भोजन, वस्त्र, रोजगार, आवास, स्वच्छ पेयजल और स्वच्छ हवा देना चुनौतीपूर्ण है। दक्षिण भारतीय राज्यों की प्रजनन दर का संतोषजनक स्तर 1.5 है। नेशनल फेमिली सर्वेक्षण 2015-16 के अनुसार उत्तर प्रदेश की प्रजनन दर 2.74 और बिहार की 3.41 है। देश की बढ़ती जनसंख्या राष्ट्रीय चिंता है। जन-जागरूकता के प्रभाव सीमित हैं। मोटे तौर पर तीन उपाय ही शेष हैं। पहला उपाय है- जनसंख्या वृद्धि का हतोत्साहन। दूसरा, जनसंख्या संयमी लोगों को प्रोत्साहन और तीसरा, बिना जाति, पंथ या मजहब देखे देश के प्रत्येक नागरिक पर जनसंख्या सीमित करने वाली विधि का अध्यारोपण। इसमें जनसंख्या संयमी परिवारों को प्रोत्साहन की नीति दोहरे लाभ देगी। तमाम परिवार प्रोत्साहन के आकर्षण में जनसंख्या नियंत्रण के राष्ट्रधर्म को समझेंगे। इससे जन-जागरण भी होगा।

जनसंख्या नियंत्रण की प्रोत्साहन नीति में विशेष सुविधाओं वाला ग्रीन कार्ड जारी किया जा सकता है। बिजली बिल या सार्वजनिक सेवाओं यथा रेल, बस में छूट, अतिरिक्त राशन, नि:शुल्क शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाएं आदि सम्मिलित की जा सकती हैं। गरीबी और अशिक्षा वाले क्षेत्रों में जनसंख्या नियंत्रण के वैज्ञानिक उपाय प्राय: नहीं अपनाए जाते। दक्षिण भारत के राज्यों की प्रति व्यक्ति आय उत्तर भारत के राज्यों की तुलना में अधिक है। दक्षिण की प्रजनन दर उत्तरी राज्यों की तुलना में कम है। जनसंख्या के आधार पर बजट आवंटन पर दक्षिण के राजनेता टिप्पणी करते रहे हैं। बातें और भी हैं। चिकित्सा आदि सुविधाओं के कारण मृत्यु दर घटी है। वृद्धों की संख्या भी बढ़ रही है। जापानी जनसंख्या की समस्या ऐसी ही है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:19-08-19

प्लास्टिक और हम

संपादकीय

हमारे यहां यह एक आम नजारा है। आपने अक्सर देखा होगा कि गाय जैसे पशु जब कूडे के ढेर से खाने का सामान ढूंढ़ रहे होते हैं, तो उनके उस खाने के साथ प्लास्टिक की इक्का-दुक्का थैलियां भी उनके पेट में पहुंच रही होती हैं। कुछ समय पहले एक खबर ऐसी भी आई थी कि एक चिड़ियाघर के दरियाई घोड़े का निधन हुआ, तो उसका पोस्टमार्टम करना पड़ा, जिसमें उसके पेट से भारी मात्रा में प्लास्टिक की थैलियां मिलीं, जो शायद उसने भोजन के साथ ही निगल ली थीं। लेकिन अगर आप सोचते हैं कि प्लास्टिक सिर्फ हमारे आस-पास रहने वाले अबोध जानवरों के पेट में ही पहुंच रहा है, तो आप गलत हैं। वैज्ञानिकों ने पाया है कि प्लास्टिक हम सबके शरीर में किसी न किसी के रूप में पहुंच रहा है। कैसे पहुंच रहा है, इसे जानने के लिए हमें पिछले दिनों अमेरिका के कोलोराडो में हुए एक अध्ययन के नतीजों का समझना होगा। अमेरिका के जियोलॉजिकल सर्वे ने यहां बारिश के पानी के नमूने जमा किए। ये नमूने सीधे आसमान से गिरे पानी के थे, बारिश की वजह से सड़कों या खेतों में बह रहे पानी के नहीं। जब इस पानी का विश्लेषण हुआ, तो पता चला कि लगभग 90 फीसदी नमूनों में प्लास्टिक के बारीक कण या रेशे थे, जिन्हें माइक्रोप्लास्टिक कहा जाता है। ये इतने छोटे होते हैं कि इन्हें नंगी आंखों से नहीं देखा जा सकता, बल्कि माइक्रोस्कोप से चालीस गुना बड़ा करके ही देखा जा सकता है। अनुमान है कि ये प्लास्टिक के वे कण हैं, जो हवा में हरदम तैरते रहते हैं और वही बारिश की बूंदो में मिलकर धरती पर बरसे हैं।

माइक्रोप्लास्टिक हमारे वातावरण का एक हिस्सा बन चुके हैं। वे हवा में हैं, पानी में हैं, नदी में हैं, समुद्र में हैं, बारिश में हैं, और इन सबके चलते वे हमारे भोजन में भी हैं, हम मनुष्यों के भी, पशुओं के भी और शायद सभी प्राणियों के। आप चाहे मांसाहारी हों या शाकाहारी हों, पर इसके साथ ही आप प्लास्टिकहारी भी बन चुके हैं। आप व्रत या रोजा रख सकते हैं, लेकिन इस दौरान भी आप हवा में तैरते माइक्रोप्लास्टिक को सांस के साथ शरीर में घुसने से नहीं रोक सकते। बहुत सारे अध्ययनों में इंसान के फेफड़ों में भी माइक्रोप्लास्टिक पाया गया है। इसके सीधे खतरे दो तरह के हैं। एक तो प्लास्टिक में ऐसे बहुत से रसायन होते हैं, जो कैंसर का कारण माने जाते हैं। इसके अलावा शरीर में ऐसी चीज जा रही है, जिसे हजम करने के लिए हमारा शरीर बना ही नहीं है, यह भी कई तरह से सेहत की जटिलताएं पैदा कर रहा है।

हालांकि इसमें कुछ नया नहीं है, प्लास्टिक हमारे शरीर और पर्यावरण को कितना नुकसान पहुंचा सकता है, इसे हम पिछली सदी का अंत होते-होते अच्छी तरह समझ चुके थे। लेकिन यह भी सच है कि इतने साल बीच जाने के बावजूद न तो हम इसका विकल्प खोज सके और न ही इसका इस्तेमाल बढ़ने की दर ही थाम सके। पिछली सदी में जब प्लास्टिक के विभिन्न रूपों का अविष्कार हुआ, तो उसे विज्ञान और मानव सभ्यता की बहुत बड़ी उपलब्धि माना गया था, अब जब हम न तो इसका विकल्प तलाश पा रहे हैं और न इसका उपयोग ही रोक पा रहे हैं, तो क्यों न इसे विज्ञान और मानव

सभ्यता की सबसे बड़ी असफलता मान लिया जाए? लेकिन अब हमारे सामने सफलता की ओर बढ़ने का कोई विकल्प नहीं है।

THE HINDU

Date:19-08-19

Unclear doctrine

No- first -use is integral to India's nuclear doctrine and leaves no space for ambiguity

Editorial

Defence Minister Rajnath Singh has been somewhat careful in speaking of envisioning a change in India's nuclear deterrence posture. In place for 16 years, since January 4, 2003, when the doctrine was adopted formally, New Delhi has said consistently that India's nuclear weapons were based on staggering and punitive retaliation, in case deterrence failed. The retaliation to a nuclear strike, any nuclear strike, whether by tactical or theatre weapons or something bigger, would be crushing enough to deter the possible use of nuclear weapons by an adversary. So the theory goes. On the first death anniversary of former Prime Minister A.B. Vajpayee, and in the nuclear proving ground in Pokhran, the Minister said two things: that the no-first-use has served India well so far, and that what happens in future depends on circumstances. There ought to be no scope for confusion here. Security is, after all, a dynamic concept. It was the security environment in the neighbourhood coupled with the pressure brought by the Comprehensive Nuclear Test Ban Treaty that forced India out of the nuclear closet and, at the same time, to adopt the no-first-use posture. The structures associated with the doctrine, the command and control that can survive a nuclear strike, the redundancies that are in-built, the secure communications, have all been developed keeping in view the posture perspective.

But there is a danger that the minister's remark could spark off a nuclear arms race, given the strategic paranoias that have been at work in this part of the world for over half a century. In the elections of 2014, the BJP's manifesto had references to an intention to update and revise the nuclear doctrine, but that went nowhere. It is conceivable that nuclear weapons could fall into the hands of non-state actors in Pakistan, but even in such scenarios that warrant pre-emptive action, a nuclear strike cannot be a viable option. It would have been much better if Mr. Singh had elaborated on his thoughts so that a debate could have taken place, and not kept his remarks enigmatic. In a nuclear circumstance it is much better to convey the overwhelming nature of the deterrence than to keep the potential adversary guessing. In this respect it is a good idea for the government to make public any periodic review in its strategic posture. The no-first-use policy comes with being a confident nuclear power. For him to state the future is open is to say nothing and at once imply everything. In matters of nuclear doctrine, it is important to be clear above all else. Nothing must be left to interpretation.